

मातृ-दर्शन



“भाईजी”

प्रकाशक :

श्री श्री आनन्दमयी संघ

कनखल, हरिद्वार

शारदीय नवरात्र

अक्टूबर, १९९९

मूल्य : पचीस रुपये

मुद्रक :

वर्द्धमान मुद्रणालय

जवाहरनगर कॉलोनी, वाराणसी

निवेदन

अखण्ड-भाव-घन मातृमूर्ति श्री श्री माँ की तुलना केवल विराट आकाश के साथ ही सम्भव हो सकती है। उनके विराट स्वरूप की वर्णना मनुष्य की शक्ति से परे है। तो भी भावग्राही भक्त उनके अलौकिक भाव-विलास का मधुमय करुण स्मृति-जाल रचना करते हैं—अपने ही प्रयोजन से। मातृ-स्मृति कैसी अमूल्य सम्पद है भावग्राही भक्त ही उसके यथार्थ पारखी हैं।

भक्तों के निकट “मातृदर्शन” ग्रन्थ एक अनमोल सम्पद है। इसके रचयिता भाईजी का विक्षुब्ध जीवन विश्वजननी की असीम स्नेहधारा से किस प्रकार मधुमय, प्राणमय तथा आनन्दमय हो उठा था उसका प्रमाण इस पुस्तक के हर पन्ने में मिलता है। मन्त्रविभूति, भाव-

विभूति, तथा समाधि-भाव आदि अध्यायों में श्री श्री माँ के निर्मल दिव्य जीवन के विविध अलौकिक भावों का प्रकाश मिलता है। ऋषितुल्य भाईजी की लेखनी से परम कल्याणमयी माँ का जो स्वरूप प्रकाश में आया है यथार्थ में ही वह अपूर्व है।

श्री श्री माँ की लोकपावन जीवन-लीला का ऐश्वर्य सबसे पहले भाईजी ही विश्वमानवों के सामने मुक्तकण्ठ से प्रचारित कर गये हैं। परवर्तीकाल में अनेकों ने श्री श्री माँ की जीवनकथा लिखने का प्रयास किया है, अभी भी कर रहे हैं और भविष्य में भी करेंगे। तथापि भाई जी के द्वारा लिखित “मातृदर्शन” अनन्तकाल तक श्री श्री माँ के भक्तों के हृदय में एक विशिष्ट स्थान अधिकार किये रहेगा उसके सर्वश्रेष्ठ साक्षी हमारे अगणित पाठक वृन्द ही हैं।

—प्रकाशक

भूमिका

जब श्री श्री माँ और पिता जी के साथ भाई जी कैलास मानसरोवर परिक्रमा को गये तो ‘मातृ-दर्शन’ की पाण्डुलिपि प्रकाशन के लिए श्री गंगाचरण दासगुप्त जी को दे गये थे। कैलास से लौटते हुए १९३७ ई० सौर भाद्र झूलन द्वादशी को अलमोड़े में माँ की सन्निधि में भाईजी की जीवनलीला समाप्त हुई। तिरोधान के कुछ दिन बाद ही श्री दासगुप्तजी के प्रयत्न से मातृ-दर्शन प्रकाशित हुआ।

भाई जी का पूर्व नाम ज्योतिषचन्द्र राय और उनके पिता का नाम गोविन्दचन्द्रराय था, वे ऋषि-तुल्य व्यक्ति थे। १८८० ई० सौर श्रावण शुक्रवार शुक्ल दशमी को भाई जी का जन्म हुआ था। चटगाँव के कुलीन वैद्यवंश में भाई जी का जन्म और शिक्षा-दीक्षा हुई। उनका जीवन आरम्भ से अन्त तक सुन्दर सरल और पवित्र था। अन्त में माँ के श्रीचरणोंमें सर्वस्व समर्पित करके संन्यास दीक्षा ग्रहण की तथा मौनानन्द पर्वत के नाम से परिचित हुए।

अल्मोड़े में, उनके देहान्त के कुछ क्षण पहले का वर्णन पिताजी भोलानाथ के शब्दों में ही लिखता हूँ—

“आखिर तक ज्योतिष का सम्पूर्ण ज्ञान था। इहलीला समाप्ति के थोड़े समय पूर्व मुझसे कहा—“बाबा ! देखिये, इस संसार में कोई किसी का नहीं है। केवल एकमात्र माँ ही सत्य

विभूति, तथा समाधि-भाव आदि अध्यायों में श्री श्री माँ के निर्मल दिव्य जीवन के विविध अलौकिक भावों का प्रकाश मिलता है। ऋषितुल्य भाईजी की लेखनी से परम कल्याणमयी माँ का जो स्वरूप प्रकाश में आया है यथार्थ में ही वह अपूर्व है।

श्री श्री माँ की लोकपावन जीवन-लीला का ऐश्वर्य सबसे पहले भाईजी ही विश्वमानवों के सामने मुक्तकण्ठ से प्रचारित कर गये हैं। परवर्तीकाल में अनेकों ने श्री श्री माँ की जीवनकथा लिखने का प्रयास किया है, अभी भी कर रहे हैं और भविष्य में भी करेंगे। तथापि भाई जी के द्वारा लिखित “मातृदर्शन” अनन्तकाल तक श्री श्री माँ के भक्तों के हृदय में एक विशिष्ट स्थान अधिकार किये रहेगा उसके सर्वश्रेष्ठ साक्षी हमारे अगणित पाठक वृन्द ही हैं।

—प्रकाशक

भूमिका

जब श्री श्री माँ और पिता जी के साथ भाई जी कैलास मानसरोवर परिक्रमा को गये तो ‘मातृ-दर्शन’ की पाण्डुलिपि प्रकाशन के लिए श्री गंगाचरण दासगुप्त जी को दे गये थे। कैलास से लौटते हुए १९३७ ई० सौर भाद्र झूलन द्वादशी को अलमोड़े में माँ की सन्निधि में भाईजी की जीवनलीला समाप्त हुई। तिरोधान के कुछ दिन बाद ही श्री दासगुप्तजी के प्रयत्न से मातृ-दर्शन प्रकाशित हुआ।

भाई जी का पूर्व नाम ज्योतिषचन्द्र राय और उनके पिता का नाम गोविन्दचन्द्रराय था, वे ऋषि-तुल्य व्यक्ति थे। १८८० ई० सौर श्रावण शुक्रवार शुक्ल दशमी को भाई जी का जन्म हुआ था। चटगाँव के कुलीन वैद्यवंश में भाई जी का जन्म और शिक्षा-दीक्षा हुई। उनका जीवन आरम्भ से अन्त तक सुन्दर सरल और पवित्र था। अन्त में माँ के श्रीचरणोंमें सर्वस्व समर्पित करके संन्यास दीक्षा ग्रहण की तथा मौनानन्द पर्वत के नाम से परिचित हुए।

अल्मोड़े में, उनके देहान्त के कुछ क्षण पहले का वर्णन पिताजी भोलानाथ के शब्दों में ही लिखता हूँ—

“आखिर तक ज्योतिष का सम्पूर्ण ज्ञान था। इहलीला समाप्ति के थोड़े समय पूर्व मुझसे कहा—“बाबा ! देखिये, इस संसार में कोई किसी का नहीं है। केवल एकमात्र माँ ही सत्य

हैं।" उसके बाद "माँ" "माँ" कहकर प्रणव का उच्चारण किया। हरिराम को बुलाकर कहा "सुनो—We are all one। माँ, मैं एक हूँ, बाबा, मैं एक हूँ" उसके बाद तुम्हारी माँ की ओर देख "माँ" "माँ" कहते हुए जीवनलीला समाप्त की।।"।

एकनिष्ठ भक्त के कल्याण के लिए हमारी भक्तजननी जगदम्बा का असीम वात्सल्य किस तरह बरसता है, इसका उज्ज्वल निदर्शन भाईजी की अन्तःलीला से मिलता है, ऐसा सुन्दर दृष्टान्त हमारे स्मृतिपट पर अनन्तकाल तक रहेगा।

भाईजी ने ज्ञान, भक्ति और साधन में अपूर्व प्रतिष्ठा प्राप्त की तथा जिस प्रकार उन्होंने माँ की पतित-पावनी विभूति का जगत् को दर्शन कराया उसकी स्मृति श्री श्री माँ के भक्तों के हृदय में हमेशा रहेगी।

प्रकाशक

१. भाईजी के देहान्त पर बाबा भोलानाथ ने जो पत्र श्री गंगाचरण दासगुप्तजी को ८.९.३७ तारीख को लिखा था, उसी में से उद्धृत किया गया है।

विषय-सूची

१. मातृ-दर्शन	१
२. मन्त्र-विभूति	२३
३. भाव-विभूति	३१
४. योग-विभूति	४६
५. समाधि-भाव	५८
६. लीला-खेल	६८
७. आश्रम	१०१
८. नवजीवन के पथ पर	११६
९. अभियान	१३०
१०. श्री श्री माँ	१३३
११. श्री श्री पिताजी	१४०
१२. अपनी बात	१४२
१३. श्री श्री माँ कहती हैं	१४७
१४. भाईजी की बारह वाणियाँ	१५०

ॐ भवतापविनाशिन्या आनन्दघनमूर्तये ।
ज्ञानभक्ति प्रदायिन्यै मातस्तुभ्यं नमोनमः ॥

—“भाईजी”



मातृ-दर्शन

श्री श्री माता जी का जीवन-चरित्र लिखना अथवा लोगों को आकर्षित करने के लिये उनकी अनिर्वचनीय शक्ति का परिचय कराना इस पुस्तक का उद्देश्य नहीं है। मेरे निर्जीव मन में कैसे उन्होंने प्राणों का सञ्चार किया इस विषय से सम्बन्धित कुछ घटनाओं का उल्लेख मात्र इस पुस्तक में है। जो मैंने स्वयम् देखा और अनुभव किया वही प्रसंग इस पुस्तक में है। यदि इन प्रसंगों में मेरी अयोग्यता के कारण कुछ भाषा और वर्णन में त्रुटि तथा अस्पष्टता रह गयी हो तो उसके लिये मैं माँ के चरणों में बार-बार क्षमा प्रार्थना करता हूँ।

बचपन ही में मैं मातृहीन हो गया था। सुना है कि तब किसी की 'माँ' पुकार मात्र सुनकर मेरी आँखों में पानी भर आता और मैं कमरे के फर्श पर छाती रख कर हृदय की ज्वाला शान्त करता। मेरे स्वर्गीय पिता एक ऋषितुल्य पुरुष थे। उनके प्रगाढ़ धर्मानुराग के प्रभाव से बचपन ही से सद्भावना के बीज मेरे हृदय में जम गये थे। १९०८ ई० में कुलगुरु की कृपा से मैं शक्तिमंत्र में दीक्षित हुआ। फलस्वरूप 'माँ'-'माँ' पुकार से शान्ति बोध करने पर भी 'माँ ही प्राणीमात्र की सर्वस्व हैं'- इस सत्य का बोध नहीं हुआ। सदा यह आकांक्षा बनी रहती थी, कि एक ऐसी सजीव मूर्तिमयी माँ का दर्शन करूँ जिसकी गम्भीर दृष्टि से यह दुःखी हृदय स्वयं ही बदल जाये। साधु-सन्तों का तो कहना ही

क्या यदि कोई ज्योतिषी भी मिलता तो उससे झट पूछ बैठता कि 'यह सौभाग्य क्या मुझे प्राप्त होगा ?' कोई भी मुझे निराश नहीं करता था ।

इसी उपलक्ष्य में अनेक तीर्थों में भी परिभ्रमण किया, अनेक महात्माओं के दर्शनों का सौभाग्य भी हुआ किन्तु किसी ने भी इस दीन को आकर्षित नहीं किया ।

१९१८ ई० में बंगाल के 'ढाका' शहर में मैं नौकरी के सिलसिले में आया । सन् १९२४ के अन्तिम भाग में सुना कि शहर के निकट शाहबाग के बगीचे में एक माता जी ठहरी हैं । बहुत दिनों से मौन हैं फिर भी कभी योगासन में बैठकर मन्त्रोच्चारण करते हुए कुण्डली भर कर बातचीत कर लेती हैं । एकदिन प्रातःकाल जिसे मैं सुप्रभात ही कहूँगा, अपनी व्याकुल प्रार्थना मन में लेकर शाहबाग गया और बाबा भोलानाथ के सौजन्य से माँ के श्री चरणों के दर्शन भी प्राप्त हुए । उनकी शान्त योगावस्था तथा कुलवधू सा भाव, इन दोनों का सुन्दर सामञ्जस्य देख मैं आश्चर्य में पड़ गया । और यह भी देखा कि जिनकी प्रतीक्षा में इतने दिनों से बैठा हूँ, जिनकी खोज में देश-विदेश घूमा वही आज मेरे सम्मुख हैं । मेरे मन और प्राण आनन्द से भर उठे, शरीर रोमाञ्चित होने लगा । इच्छा हुई कि चरणों में गिर पड़ूँ और रोकर कहूँ 'माँ इतने दिन दूर क्यों रखा ?'

कुछ देर बाद मैंने माँ से पूछा 'मेरी पारमार्थिक उन्नति की कोई आशा है ?' माँ ने कहा 'भूख तो अभी नहीं लगी है' । मैं सोचकर आया था कि कितनी ही बातें करूँगा और सुनूँगा किन्तु न मालूम किस अपूर्व कृपानुभूति से मूक एवं मंत्रमुग्ध-सा हो

गया । देखा कि माता जी भी मौन हैं । थोड़ी ही देर बाद हार्दिक श्रद्धा से प्रणाम कर मैंने विदा ली । चरण छूने की प्रबल इच्छा होने पर भी छू न सका । भय अथवा किसी आशङ्का से नहीं अपितु एक अव्यक्त आवेग की प्रबलता से माँ के पास से चला आया । शाहबाग फिर नहीं गया । मैंने सोचा जब तक वे अपना घूँघट हटा माँ के समान नहीं खींच लेंगी तब तक उनके चरणों को किस प्रकार हृदय में धारण करूँगा । एक ओर तो यह अभिमान, दूसरी ओर दर्शन के लिये व्याकुलता, इन दोनों का द्वन्द्व मेरे अन्दर चलने लगा । इस बीच में शाहबाग के निकटवर्ती सिक्खों के अखाड़े की बीच की दीवार की ओट से, माता जी के दो दिन दर्शन उनके अज्ञात में ही किये । मन की ऐसी अद्भुत गति, सोचता कि यह क्या होता जा रहा है, किन्तु हिताहित समझने का सामर्थ्य नहीं थी । माँ की सदा खबर रखता और बीच बीच में उनकी लीला के अनेक प्रकार के प्रसङ्ग सुन लेता । इस प्रकार दैनिक कामधाम के चलते सात महीने कट गये । तदनन्तर एक दिन मैं माँ को अपने घर लिवा आया । बहुत दिनों के बाद उन्हें अपने समीप देख खूब आनन्द हुआ किन्तु वह स्थायी न हो सका । विदा के समय माँ के चरण छूते ही उन्होंने झट से चरण हटा लिये । मुझे बड़ी व्यथा हुई ।

इधर कई महीनों से अनेक शास्त्रों की आलोचना द्वारा मन को स्थिर करने की चेष्टा भी कर रहा था । सहसा मन में आया कि धर्म और सदाचार के विषय में कुछ लिखकर छपवाऊँ । शीघ्र ही 'साधना' नाम की एक पुस्तक तैयार हो गयी और उसकी एक प्रति भूपेन्द्रनारायण दासगुप्त द्वारा माँ के श्री चरणों में भेज दी । माँ ने

कहा—‘पुस्तक के रचयिता को यहाँ आने के लिये कहना ।’ माँ के आह्वान से प्रसन्न हो एक दिन सुबह शाहबाग जा पहुँचा । वहाँ जाकर सुना कि माँ का तीन वर्ष मौन पूर्ण हो चुका है । वे आकर मेरे अत्यन्त निकट बैठ गयीं । पुस्तक को आदि से अन्त तक सुनकर बोलीं—‘यद्यपि मौनावस्था के बाद अभी मेरा स्वर नहीं खुला है किन्तु आज स्वतः बात निकल रही है । ‘पुस्तक सुन्दर हुई है । शुद्ध भाव की वृद्धि की चेष्टा करना ।’

उस दिन माताजी का पवित्र सान्निध्य पाकर एक नवीन ही चित्र बाहर-भीतर खिल उठा, बाबा भोला नाथ भी वहाँ पर उपस्थित थे । मुझे ऐसा लगा मानो अपने माता-पिता के सामने बच्चों की भाँति बैठा हूँ । उत्साह और आनन्द से विदा ले मैं घर लौट आया ।

इसके बाद ही से शाहबाग आना-जाना मैंने आरम्भ कर दिया । एकदिन मैंने अपनी पत्नी से कहा कि तुम भी कुछ द्रव्यादि लेकर माँ के दर्शन कर आओ। उन दिनों माँ नाक में लौंग भी पहनती थीं । पाँच-सात दिन बाद ही मेरी पत्नी ने हीरे की लौंग, चाँदी की थाली, दही, फूल आदि सामग्री माँ के चरणों में अर्पण करने का सौभाग्य प्राप्त किया । बाद में मालूम हुआ कि माता जी इधर कई महीनों से जमीन पर ही भोजन रखकर खाने लगी थीं तब पिता जी ने विरक्ति से कहा था “पीतल की थाली में नहीं खाओगी,—काँसे की थाली में नहीं खाओगी फिर क्या चाँदी की थाली में खाओगी ?” माँ ने हँसते-हँसते कहा था, ‘मैं चाँदी की थाली में ही खाऊँगी; किन्तु तीन महीने तक इसके सम्बन्ध में किसी से कह भी नहीं सकोगे और स्वयम् भी चाँदी की थाली का

बन्दोबस्त मत करना’ । वास्तव में तीन महीने बीतने के पहले ही चाँदी की थाली माँ के दरबार में उपस्थित हो गयी ।

एक दिन माँ ने मुझसे कहा, ‘तुम सदा यह स्मरण रखना कि तुम वास्तविक ब्राह्मण हो, तुम्हारे साथ भगवद्भावरूपी अतीव सूक्ष्म सूत्र से इस शरीर का अविच्छिन्न योग रहा है।’ उस दिन से मैं सब प्रकार से अपने को सदाचार में सुसंयत रखने की चेष्टा करने लगा ।

मैं बहुतों को यह कहते सुनता था कि उन लोगों को स्वप्न में अथवा प्रत्यक्ष माताजी की अनेक अलौकिक मूर्तियों के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है । माताजी की साधारण मूर्ति में ही महती शक्ति का अभूतपूर्व विकास मुझे दृष्टिगत हो चुका था । अतएव कुछ असाधारण मूर्ति देखने की विशेष उत्कण्ठा नहीं हुई । विचार आया यदि उनके व्यावहारिक धैर्य और शान्ति के आदर्श में ही अपने को गठित कर सकूँ तो यही मेरे लिए बहुत है । किन्तु जड़ता का संस्कार मुझे अधीर कर इधर-उधर भटकता रहा । इसीलिये एक दिन माँ को एकान्त में पाकर मैंने जिज्ञासा की—‘माँ सचमुच आप कौन हैं, बतलाइये न ?’ माँ ने हँसते-हँसते कहा—“बालकों की तरह यह प्रश्न कैसे उठा ? जीवों को अपने संस्कार के अनुसार देवी-देवताओं के दर्शन होते हैं । मैं पहले जो थी, आज भी वही हूँ, आगे भी वही रहूँगी । तुम जिस समय जो कहो, जो सोचो वही मैं हूँ । फिर भी इस सत्य को जानना कि इस शरीर का जन्म प्रारब्ध-भोग के लिये नहीं हुआ है, तुम यही समझना कि यह शरीर भावों का मूर्तिमान स्वरूप है,

तुमने इसकी अभिलाषा की और इसलिये पाया अथवा तुमने चाहा इसलिये पाया भी । अब इसके साथ समयानुसार लीला करते चलो और अधिक जानकर क्या होगा” । मैंने कहा, “माँ इस कथन से तो सन्तोष हुआ नहीं !” यह सुन “और क्या जानना चाहता है, बोल, बोल” कहते ही उनके मुख और नेत्रों में एक दैवी भाव दिखाई दिया । मैं भय और विस्मय से चुप हो गया ।

पन्द्रह दिन बाद बहुत तड़के शाहबाग जाकर मैंने देखा कि माँ के शयनगृह का दरवाजा बन्द है । मैं दरवाजे के ठीक सामने ५०,६० हाथ की दूरी पर बैठा था कि सहसा दरवाजा खुल गया । देखता हूँ कि बाल-अरुणवर्ण वाली सौन्दर्यशालिनी द्विभुजा सौम्य देवीमूर्ति कमरे को आलोकित कर खड़ी है । आँख की पलक भी न गिरने पायी कि फिर ठीक उसी स्थान पर मैंने माँ को देखा, मैं समझ गया कि माँ ने पूर्वोक्त अपनी दैवी प्रतिभा अपने शरीर ही में संवरण कर ली ।

एक पल में जादूगर का खेल सा हो गया । मानों किसी स्वप्नराज्य से लौट कर आया । तभी मन में यह विचार आया कि मेरे उस दिन के प्रश्न के उत्तर स्वरूप माँ ने आज मुझे दिखा दिया है कि मैं 'कौन हूँ ।' मैं एक स्तोत्र को दुहराता हुआ प्रार्थना करने लगा कि इस शुभ मुहूर्त में सन्तान की तरह माँ का आशीर्वाद और कृपा प्राप्त कर धन्य हो सकूँ ! कुछ देर बाद माँ ने मेरी ओर आते हुए एक फूल और दूब के हरे तिनके हाथ में लिये और प्रणाम करते समय उन्होंने वह सब मेरे सिर पर रख दिये ।^१

१. वह अभी भी यत्न से सुरक्षित है ।

मैं आत्मविभोर हो माँ के श्रीचरणों पर अश्रुधारा बहाता हुआ गिर पड़ा । जो दिन जाता है वह फिर लौटता नहीं, किन्तु आग्रह यही रहता है कि वह फिर आये ।

तब से मेरे मन में यह बात समा गयी कि ये केवल मेरी ही माँ नहीं वरन् संसार की माँ हैं । फिर मैं घर लौट आया । मन तनिक एकाग्र होते ही माँ की मुखच्छवि आँखों में उतर आती और झर-झर अश्रुपात होने लगता । उस दिन की भावविभोरता ने मेरे हृदय में ऐसा प्रभाव डाला कि वे अपनी इस मनुष्य-देह से ही मेरी अठारह वर्षों की नित्य ध्येया चतुर्भुज मूर्ति के स्थान पर अधिकार कर अनायास ही आ बैठीं । इस प्रकार के परिवर्तन के कारण उपासना के समय पूर्व संस्कार के प्रबल होनेपर कभी-कभी भयभीत हो सोचता कि मैं क्या कर रहा हूँ । किन्तु थोड़े ही दिनों में माँ मेरे चित्त में दृढ़तापूर्वक प्रतिष्ठित हो गयीं ।

श्री श्री माता जी की जन्मपत्री

सु०शु० १	११
२ बु०	१२
	१० मं०रा०
३	९ चं०
बु० ४	६
५ के०	७ श०

खेओड़ा और सुलतानपुर में ही माँ के बाल्यकाल के थोड़े बहुत लीला-खेल अलक्ष्य रूप चलते रहे । विवाह के बाद

माताजी कुछ समय तक अपने जेट के कर्मस्थल श्रीपुर और नरुन्दि तथा ससुराल आटपडा ग्राम में रहीं। उसके पश्चात् ढाका आने के पहले ३ वर्ष विद्याकूट (नैहर) तथा ५-६ वर्ष पिताजी के कर्मस्थान बाजितपुर में बिताये। तदुपरान्त वे ढाका आयीं।

अष्टग्राम में ही विशेष रूप से कीर्तन का भाव प्रथम प्रकाशित हुआ। बाजितपुर में भी कभी-कभी उक्त भाव देखा गया था। बाजितपुर में मन्त्र और योग-क्रियाओं का प्रकृत

श्री श्री माँ आनन्दमयी (जन्म नाम श्रीमती निर्मला देवी) १८१८ शक (बंगला १३०३ सन्, १९ वैशाख) १८९६ ई० ३० अप्रैल बृहस्पतिवार रात्रि तीन दण्ड शेष रहते त्रिपुरा जिला के अन्तर्गत खेओड़ा ग्राम में मनुष्य-देह में अवतीर्ण हुई। श्री श्री माँ ने जिस स्थान में जन्म लिया था, वह कालक्रम से लुप्त होने को था कि ३ ज्येष्ठ १३४४ बंगला संवत्सर (१७ मई १९३७ ई०) में जब माता जी खेओड़ा गयीं तब भक्तों के अनुरोध पर उन्होंने जिस स्थान पर जन्म ग्रहण किया था उसे स्वयं ही बतला दिया। उनके पिता श्री विपिनविहारी भट्टाचार्य उसी जिले के विद्याकूट ग्राम के प्रसिद्ध काश्यप वंश के वंशधर थे। उन्होंने अपना प्रारम्भिक जीवन ननिहाल में ही बिताया था। श्री श्री माता जी के पिता और माता श्रीमती मोक्षदा सुन्दरी देवी दोनों ही का स्वभाव मधुर था। उनको यदि धर्मीनिष्ठा, सदाचार और सरलता का आदर्श कहा जाये तो भी अनुचित न होगा। माताजी के ननिहाल का वंश भी अति प्राचीन तथा सम्प्रांत था। इस परिवार में कई एक पण्डित तथा साधक भी हो गये थे, एवं एक धर्मपरायण कुलवधू ने आनन्द के साथ हरिस्मरण करते हुए मृत पति के साथ जलती चिता पर आशुहण भी किया था। माताजी के पिता के ननिहाल में भी एक सती हुई थी ऐसी भी एक किंवदन्ती है। ढाका जिले के विक्रमपुरस्थ आटपाड़ा ग्राम के श्रीयुत रमणीमोहन चक्रवर्ती के साथ १२ वर्ष १० महीनेकी उमर में माताजी का विवाह हुआ। वे भी उस ग्राम के प्रसिद्ध भरद्वाज वंश के वंशधर थे। दूसरों की भङ्गलकामना करना ही उनका एकमात्र व्रत था। वे 'भोलानाथ' एवं पश्चिम देश में 'रमा पागल' के नाम से प्रसिद्ध थे।

स्फुरण हुआ। बाद में शाहबाग आने पर मौनावस्था के साथ-साथ जीवन में एक महान् शान्त भाव का प्रकाश देखा गया। इसका भाषाद्वारा वर्णन नहीं किया जा सकता। कितनी ही आध्यात्मिक वाणियाँ और दिव्य भाव की लीलायें इस समय प्रगट हुईं।

तभी से अनेकानेक भक्तों का समागम होने लगा। सभी पूजा, कीर्तन और यज्ञ आदि में सहयोग देकर कृतार्थ हुए। इस समय भक्तों के हृदय में कितने शान्त भाव का संचार हुआ वह कहा नहीं जा सकता। तब से ही सभी माँ को "शाहबाग की माँ" कहते और कभी आवेग के साथ कहते कि माँ का ऐसा ऐश्वर्य और कहीं नहीं दीखेगा।

बाजितपुर रहते समय ढाका में स्थित सिद्धेश्वरी कालीमन्दिर का चित्र माँ के नेत्रों में उद्भासित हो उठा और ढाका आकर माँ ने सिद्धेश्वरी के आसन का पुनरुद्धार किया।

उस समय श्री प्राणगोपाल मुखर्जी, अवसर-प्राप्त डिप्टी पोस्ट मास्टर जनरल, ढाका में थे। उन्होंने और बाउलचन्द्र बसाक ने इस स्थान के संरक्षण की व्यवस्था की।

साक्षात्कार के पहले दिन ही माँ ने संकेत किया था कि 'भूख होनी चाहिये।' किन्तु विषयवासना में फँसे प्राणों के लिए यह भूख होनी ही कठिन है जब तक कि हृदय की उद्दाम सांसारिक तरंगों उन्हीं के चरणों में जाकर शान्त न हो जायें। इसीलिये सदैव ही मन ही मन प्रार्थना करता कि 'माँ, मूर्तिमयी क्षुधा तो तुम्हीं हो, भूख दो।' किस प्रकार माँ ने अनेक लीला-रहस्यों द्वारा अपनी अहैतुकी कृपा प्रकट कर मेरे चंचल लक्ष्य को

अपनी विराट सत्ता की ओर आकर्षित किया, इस सम्बन्ध की कई एक घटनाओं का संक्षेप में उल्लेख करता हूँ।

(१) एक दिन रात को मैं अपने घर के खुले बरामदे में टहल रहा था, सारा संसार चाँदनी से प्लावित हो जगमगा रहा था, मैंने मुँह घुमाते ही देखा कि माँ मेरे साथ छायामूर्ति की तरह चल रही हैं। उनके बदन पर लाल जम्पर और लाल चौड़े किनारे की साड़ी है। मैं कुछ घंटे माँ को आश्रम में सफेद जम्पर और लाल फीता किनारे की साड़ी पहने घूमते देख आया था। दूसरे दिन सुबह जाने पर माँ को वही दोनों चीजें पहने देखा और यह भी पता लगा कि मेरे चले आने के बाद किसी ने उनको यह वस्त्र पहनाये थे।

माँ ने सुनकर कहा, "मैं देखने गयी थी कि तू क्या कर रहा है।"

(२) एक दिन माँ मेरे घर आयीं, मंजिल पर बैठकर बातचीत कर रही थीं। इतने में माँ को कहीं और ले जाने के लिये एक मोटर आयी। पहले ही से वहाँ जाने की बात थी, लेकिन मैं उस बात से अनभिज्ञ था। मैं जाने के लिए प्रस्तुत हुई, मुझे बहुत ही दुःख हो रहा था। दुःखी हृदय से माँ को मोटर पर बिठाने के लिये नीचे उतरा। माँ मोटर में बैठ गयीं किन्तु मोटर चली नहीं। माँ मेरी ओर देख-देख कर हँस रही थीं। बहुत कोशिश करने पर मोटर न चलती देख एक किराये की घोड़ा-गाड़ी लायी गयी। यह देख मुझे दुःख हुआ कि मोटर के रहते हुए भी माँ घोड़ा-गाड़ी से जावें सो क्यों ! उसी समय मोटर से आवाज हुई और माँ मोटर ही में गयीं।

(३) शाहबाग में धीरे-धीरे लोगों की खूब भीड़ होने लगी। एक बार चार दिन तक वहाँ जाकर भी मैं माँ के साथ बात-चीत न कर सका। पाँचवे दिन सुबह जाने का इरादा करके भी मन खराब होने के कारण नहीं गया, हताश हो बैठा रहा। देखा कि बायस्कोप की तरह माँ की मूर्ति दीवार पर अङ्कित है। उनकी मुखश्री गम्भीर थी। पीछे मुड़ कर देखा कि श्री अमूल्यरतन चौधरी कुर्सी पकड़े खड़े हैं। उन्होंने ने कहा, आपको लिवा लाने के लिये माँ ने गाड़ी भेजी है।" शाहबाग जाते ही माँ ने कहा, "इधर कई दिनों से तुझमें अस्थिरता देख रही हूँ। अस्थिरता आये बिना स्थिरता भी नहीं आती। घी से हो, चन्दन काठ से हो, यहाँ तक कि घासफूस से भी, किसी भी तरह आग जलाने की आवश्यकता है। अग्नि एक बार जल उठने पर फिर भावना नहीं रहती है, सब भस्म कर ही देगी। देखा है न? एक ही चिनगारी कितने परिश्रम से बने मकान को पल भर में ही भस्म कर देती है।"

(४) अर्द्धरात्रि में घर में या कभी दोपहर को आफिस में बैठा होता, एकाएक माँ को देखने की उत्कट अभिलाषा और अस्थिरता जाग उठती। अनेक बार माँ उसी समय और उसी स्थान पर उपस्थित हो बोल उठतीं 'तूने पुकारा था, इसीलिये आयी हूँ।'

(५) एक दिन शाम को आफिस से लौटने पर मैंने सुना कि कोई आदमी १२ बजे एक बड़ी मछली हमारे घर में रख फिर आने को कह कर चला गया है। उसके बाद फिर वह नहीं देखा गया। मछली पड़ी ही थी। जब शाम तक कोई भी नहीं आया तो

उसके टुकड़े-टुकड़ कर शाहबाग भेज दिये गये। दूसरे दिन सुबह शाहबाग पहुँचते ही पिता जी ने कहा, “तुम्हारी माँ कल रात हँसते-हँसते कह रही थी कि ‘ज्योतिष तो हमारा भगवान ही है।’ कल सुबह यहाँ कुछ भक्तों ने प्रसाद पाया था, शाम को जो कीर्तन करने के लिये आये थे उन्होंने भी सुबह के प्रसाद की बात जान प्रसाद के लिए आग्रह किया। घर में उस समय कुछ नहीं था किन्तु तुम्हारी माँ ने मसाला आदि ठीक कर रखा था उसी समय तुम्हारे घर से खगा मछली ले आया। इसीलिये तुम्हारी माँ ने ऐसा कहा।” मैं तो अवाक् हो गया, कहाँ से कौन व्यक्ति मेरे घर मछली रख गया और उसी से शाहबाग के भक्तों की परितृप्ति हुई।

इस प्रकार की और भी बहुत सी घटनाएं हुईं। शाहबाग में कोई माँ के पास प्रसाद के लिये बैठा है और उसे देने के लिये कोई वस्तु नहीं है। इधर ठीक उसी समय कुछ मिठाई व फल आदि भेजने के लिये मेरा मन व्याकुल हो उठा। मेरे आदमी ने उसे शाहबाग ले जाकर देखा कि माँ मानों उसी की प्रतीक्षा में बैठी हैं।

(६) एक दिन रात के तीन बजे मैं अपने घर में बैठा क्या देखता हूँ कि माँ अपने बिछौने में जिस ओर सिर रख कर लेटती थीं ठीक उसके विपरित दिशा में उनका सिर है। सुबह जाकर माँ को वैसे ही देखा। पूछने पर पता चला कि माँ शेषरात्रि बाहर गयी थीं और तभी से इधर ही सिर है।

मैं अपने घर में या आफिस में भी यह जान लेता था कि माँ कहाँ और किस अवस्था में हैं। यह इच्छा करके जान लेता था

सो बात नहीं। अपने आप कभी कभी आँखों के सम्मुख ये सब चित्र खिंच जाते थे। भूपेन तब रोज ही शाहबाग जाया करता था, उसके द्वारा मैं अपने दर्शन की सत्यता प्रमाणित करता था। कभी साधारण अन्तर हो जाता था। माँ कहतीं तेरा घर तो शाहबाग ही है, अपने घर तो केवल घूमने ही जाता है।

(७) एक दिन बारह बजे के समय मैं आफिस में काम कर रहा था। भूपेन ने आकर कहा—“माँ ने आपको शाहबाग बुलाया है। मैंने माँ को बता दिया था कि आज बड़े साहब छुट्टी से लौटकर अपना चार्ज लेंगे। माँ ने कहा ‘जिसकी बात है उससे जाकर कहो, वह जो चाहे सो करे।’ बिना कुछ शंका किये कागज-पत्रों को वैसे ही छोड़ बिना किसी से कहे-सुने मैं शाहबाग जा पहुँचा। माँ ने कहा ‘सिद्धेश्वरी आसन में चलो।’ पिताजी, माँ और मैं वहाँ गये। जिस स्थान पर अब स्तम्भ और शिवलिंग है, वहाँ उन दिनों एक कुण्ड था, उसमें माँ जा बैठीं। माँ का खूब हास्योत्फुल्ल भाव और आनन्दमयी मूर्ति थी। सहसा मैं पिताजी से बोला ‘माँ को हम सब श्री श्री माँ आनन्दमयी कहेंगे।’ वे बोले ‘अच्छा ऐसा ही होगा।’ माँ स्थिर दृष्टि से कुछ देर तक मेरी ओर देखती रहीं।

लगभग साढ़े पाँच बजे हम लौटे, माँ ने मुझसे पूछा ‘अब तक तो प्रसन्न था अब देख रही हूँ कि तेरे चेहरे का रङ्ग कुछ बदल रहा है’ मैंने कहा ‘घर की ओर मुँह करने से ही आफिस की बात याद आ रही है।’ माँ ने कहा ‘कोई चिन्ता की बात नहीं।’ दूसरे दिन आफिस जाने पर बड़े साहब ने उस दिन की बात ही नहीं उठायी।

मैंने माँ से पूछा था, 'ऐसी अवस्था में माँ ! आपने क्यों बुला भेजा ?' माँ ने कहा 'देखा कि इतने महीनों में कहाँ तक पहुँचे हो । और सिद्धेश्वरी न जाते तो इस शरीर का नामकरण कैसे होता ।' यह कहकर वे खूब हँसने लगीं ।

(८) एक बार गवर्नर ढाका आये । बड़े साहब ने मुझे से कहा "कल दस बजे गवर्नर के साथ मेरे मिलने की बात है । मैं आफिस होता हुआ जाऊँगा, तुम साढ़े नौ बजे आफिस में आ सकोगे ?" मैंने कहा 'अवश्य' । मुझे दूसरे दिन शाहबाग से लौट कर आने में देर हो गयी और आफिस पहुँचते-पहुँचते नौ बजकर पचास मिनट हो गये । मन ही मन सोच रहा था कि साहब से क्या कहूँगा । इसी समय साहब ने अपने बैंगले से फोन किया 'मेरी मोटर खराब हो गयी है, तुम्हे व्यर्थ ही कष्ट दिया इसके लिए मुझे दुःख है । मैं ग्यारह बजे लाट साहब के निवास स्थान पर जाऊँगा ।'

माँ ने सुनकर कहा, 'इसमें नयी बात क्या है ? तूने ही तो उस दिन मेरी मोटर बिगाड़ दी थी ।'

(९) एक दिन माँ हमारे घर आयीं । बातों ही बातों में मैंने कहा 'माँ ! आपके लिये तो ठण्डे गरम का कुछ भेद है नहीं । एक जलता अंगारा पैर पर गिर पड़े तो आपको उससे कष्ट तो नहीं होगा ?' माँ ने कहा 'डालकर ही क्यों नहीं देख लेता ।' मैंने और बात नहीं बढ़ायी । कई दिनों के बाद माँ ने उसी चर्चा के फलस्वरूप एक अंगारा स्वयम् ही अपने पैर पर रख लिया । जले हुए स्थान पर घाव दिखाई देने लगा । लगभग एक महीना हो चला किन्तु घाव सूखा नहीं । मुझे स्वयम् अपनी मूर्खता पर बड़ा दुःख हुआ । एक

दिन माँ के पास जा मैंने देखा कि वे दोनों पैर पसार कर बरामदे में एकाग्र दृष्टि से बैठी हैं । मैंने प्रणाम कर उस घाव की पीब मुँह से चूस ली । उसके दूसरे दिन से ही घाव सूखने लगा ।

इस सम्बन्ध में पीछे मैंने माँ से पूछा—“माँ, जब अंगारा माँस के ऊपर रखा तो कैसा लगा ?” माँ ने कहा “लगने के बारे में तो कुछ कह नहीं सकती, यह तो ऐसे ही खेल था । मैं तो अंगारे का काम बड़े आनन्द से देख रही थी । पहले तो देखा कि रोम जल गये फिर चमड़ा जलने लगा तो एक प्रकार की गन्ध आयी । बाद में तो जलता हुआ कोयला अपना काम समाप्त कर बुझ गया । जब घाव हुआ तो अपने स्वाभाविक रूप में रहता ही गया, जब तेरी ही तीव्र इच्छा हुई कि घाव भर उठा और घाव सूखने लगा ।”

(१०) माघ का महीना और जोरों का जाड़ा था । माँ के साथ खूब सुबह ही मैं नंगे पैर रमना के भीगे मैदान में घूम रहा था । दूर से देखा एक स्त्री-दल चला आ रहा है । मेरे मन में यह विचार उठा कि ये लोग आते ही माँ को आश्रम में ले जायेंगी । यही सोच रहा था कि उसी समय सारा मैदान घने कुहरे से आच्छन्न हो गया, और दर्शनार्थियों का दल फिर दिखाई न दिया । दो तीन घण्टे के बाद जब हम लोग आश्रम लौटे तो सुना कि वे लोग मैदान में खोजते-खोजते हैरान होकर लौट गयीं । मैदान खूब बड़ा था । यह प्रसङ्ग माँ को बताने पर माँ ने कहा, “तेरी तीव्र इच्छा ही पूर्ण हुई ।”

(११) एक बार माँ को खूब सर्दी और खाँसी हो गयी । मैं यह देख बड़े ही कातर भाव से बोला 'माँ ! जल्दी ही अच्छी हो

जाओ ।' माँ ने मेरी ओर देखते हुए हँसते-हँसते कहा, "अच्छा कल से ही अच्छी होने लगूँगी ।" और वही हुआ ।

(१२) एक दिन सुबह जाकर देखता हूँ, कि माँ को ज्वर है । मैंने उस रात कमरे में बैठ एकाग्र मन से माँ के निकट प्रार्थना की कि उनकी बिमारी मुझे हो जाय । शेष रात्रि में सचमुच ही मुझे ज्वर तथा माथे में दर्द होने लगा । प्रातःकाल माँ के समीप पहुँचते न पहुँचते ही माँ बोलीं, "मैं तो अच्छी हो गयी किन्तु तुझे ज्वर हो गया । घर जाकर स्नानादि कर भली प्रकार खाना-खाना ।" मैंने वैसा ही किया और शाम ही से मेरा शरीर अच्छा होने लगा ।

माँ बोलीं "शुद्ध अनन्य भाव से सब ही सम्भव है "

(१३) मेरे हाथ 'साधु-जीवनी' नामक एक पुस्तक आयी । उसमें एक जगह एक उक्ति थी, "वे दरिद्र को अन्नदान करने के लिये सर्वदा अपने भक्तों को उपदेश देते हैं ।" इस उक्ति के पास ही एक नोट मैंने लिख रखा था । "केवल अन्नदान से ही तृप्तिसाधन नहीं होता है ।" घटनाक्रम से यह पुस्तक शाहबाग जा पहुँची और मेरा मन्तव्य भी माँ के कान में पड़ा । इसके कई दिनों बाद मैं सुबह शाहबाग गया । एक आदमी पागल सा माँ को आकर बोला, "मुझे कुछ खाने को दो, नहीं तो मेरे प्राण नहीं बचेंगे ।" यह सुन माँ ने रसोईघर तथा भण्डारघर में जो कुछ पाया वह उसको दे दिया । उस आदमी के पानी माँगने पर माँ ने मुझसे कहा, "इसे पानी दो ।" पानी देते समय मुझे पता चला कि वह मुसलमान है तथा तीन दिनों से उसे खाना नहीं मिला था । उस दिन भूख-प्यास की असहनीय ज्वाला से विकल होकर बगीचे की दीवार फाँद कर आया था । माँ ने मुझसे कहा, "देखा,

अन्नदान कितना आवश्यक है । यह आदमी तेरी भूल बताने के लिये ही आया था । पात्र और समय के अनुसार सब कुछ ही जरूरी है । इस जगत में कुछ भी व्यर्थ नहीं होता ।"

(१४) एक दिन मैंने माँ से कहा "माँ, आजकल मुझे खूब नाम स्मरण हो रहा है ।" तब समय-समय पर मध्यरात्रि में नाम आपसे-आप होने लगता था । माँ से यह बात करते समय खुशी के साथ अहंकार का भी लेश था । माँ मेरे मुँह की ओर देखती रहीं । विशेष कुछ बोलीं नहीं । घर आकर अनुभव किया कि चेष्टा करने पर भी नामजप नहीं हो रहा है । दिन गया और रात भी बीत गयी किन्तु नाम का प्रवाह आपसे आप बन्द हो गया । दूसरे दिन सुबह भूपेन से कहा "माँ से इस बारे में कहना तो ।" भूपेन ने जाते समय रास्ते में माँ को गाड़ी पर जाते हुए देख मेरी दुर्दशा की कहानी बता दी । माँ जोर से हँसने लगीं । उस समय दस बजे थे । इधर ठीक उसी समय मेरे भीतर नाम आपसे आप प्रवाहित होने लगा । पीछे मुझे ज्ञात हुआ कि भूपेन के साथ माँ की भेंट कब हुई थी ।

इस प्रसंग में माँ ने बताया कि धर्मपथ में किंचित अहंकार की छाया भी लक्ष्य को आच्छादित कर देती है ।

(१५) श्री श्री माँ का प्रवाह अदृश्य रूप से किस प्रकार हमारे हृदय में तुरन्त ही असर करता है इसका एक दृष्टान्त देता हूँ । हम उस कृपा को अपनाकर पकड़ नहीं पाते, इसीलिये जैसे थे वही रहते । एक दिन माँ ने हँसते-हँसते कहा था, "नाम करते-करते चित्त शुद्ध होता है, बाद में श्रद्धा और भक्ति का आविर्भाव होने पर भाव शुद्ध हो जाता है, भाव शुद्ध होने पर

अनेक प्रकार की उच्च-उच्च अवस्थाओं का आभास होने लगता है और वही कार्य पूर्ण कर देता है" । जिस दिन माँ की यह वाणी मेरे कानों में पड़ी उसी दिन संध्या समय एकान्त में बैठ अनुभव किया कि नाम करने में अपूर्व आनन्द का भास हो रहा है । नाम मानो अविच्छिन्न गति से एकसूत्र हो चल रहा है । रात में सोया और जैसे ही नींद टूटी तो देखा कि धारा पूर्ववत् चल रही है । दूसरे दिन अनेक प्रकार की झंझटों में इस भाव का प्रवाह घटता बढ़ता रहा । किन्तु साँझ को जैसे ही उसी भाव से आसन पर बैठा त्योंही पहले दिन की भाँति आनन्द जग उठा, रात में नींद नहीं आयी । मध्यरात्रि में कभी-कभी तो ऐसा लगता कि नाम जब तक बन्द नहीं होगा तब तक मुझे चैन नहीं मिलेगा । मैंने पहले कभी भी गोमुख आसन नहीं किया था किन्तु उस दिन शेषरात्रि में अपने आप ही उस प्रकार का आसन हो गया । उस समय शरीर और मन एक अवर्णनीय आनन्द में आप्लुत हो उठा । नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बहने लगी । मैं अचल, अटल होकर एक ध्यान में बहुत देर तक बैठा रहा ।

माँ ने सुनकर कहा, "यह तो शहद की एक बूँद का आस्वादन मात्र हुआ है, अब सोच ले कि एक मधु के छत्ते में कितनी मिठास होगी ।"

(१६) माँ के श्री चरणों में शरणागति की प्रथमावस्था में एक दिन प्रातःकाल चुपचाप बैठा था । हृदय गम्भीर उच्छ्वासमय था । रोते-रोते यह गान स्वतः निःसृत होने लगा—

तुम्हारी साधना तुम्हारी वन्दना ।
होवे मेरा जीवन सम्बल ।

तुम्हारी स्तुति भाव अनुभाव में ।
होवे मेरा हृदय उज्ज्वल ।
तुम्हारी खोज में आकाश की ओर ।
अनिमेष दृष्टि से मैं देखूँ ।
माँगूँगा नहीं कुछ कहूँगा भी नहीं ।
चरणों में गिराऊँगा केवल अश्रुजल ।
तुम्हारे असीमत्व में घूमूँगा फिरूँगा ।
गाने को केवल तुम्हारी महिमा ।
तुम्हारे आनन्द में रहूँगा सदानन्द ।
लेकर तुम्हारे नाम की तरंग ।
मेरे सब कर्म सब धर्म ।
तुम्हारी अर्चना ही के लिए ।
ओ माँ ! शुद्ध भक्ति, विश्वास दो ।
सुन्दर चरणों को करूँ सम्बल ।

इस गाने का शीर्षक 'पागल का गाना' रख इसकी एक प्रति-
लिपि मैंने माँ की सेवा में भेज दी । सुना कि माँ उस समय हॉसिया ले
लौकी काट रही थीं । गाने के पद सुनते-सुनते उनके हाथ से लौकी
गिर पड़ी, एक विचित्र भाव से कुछ देर के लिये स्थिर हो गयीं ।

पीछे मेरे साथ भेंट होने पर माँ ने कहा, "जगत भावमय है,
सृष्टि की सभी वस्तुयें भावों का प्रतिरूप हैं (मूर्त रूप हैं) भावों के
द्वारा यदि स्वयम् को जाग्रत और उन्नत कर सकोगे तो देखोगे कि
ब्रह्माण्ड में सब जगह एक ही प्रकार की लीला हो रही है । भाव
के अभाव में ही मनुष्य इधर-उधर खोजता फिरता है, इसलिये
यथार्थ तत्त्व नहीं जान पाता ।"

इसके बाद एक दिन सिद्धेश्वरी-आसन पर हम बैठे थे। मैं ने हठात् कहा, “अपना ‘पागल का गान’ तो गा।” गाने का अभ्यास बहुत दिनों से छूट गया था, और फिर वहाँ आदमी काफी थे। मैं दुविधा में पड़ गया। माँ ने हँसते-हँसते कहा, “पागल का गान लिखा मात्र ही है, अभी तक पागल हो नहीं सका।” माँ की बात ने हृदय को प्रायः विदीर्ण-सा कर दिया और वहाँ व्यस्तता के साथ गाना गाया।

इस प्रकार माँ को उपलक्ष्य करके अनेक गानों की रचना हुई और वे सब माँ के चरणों में निवेदित होने पर माँ कभी-कभी खूब प्रसन्न होती थीं अथवा कभी बिल्कुल चुप भी हो जाया करती थीं। ऐसा भी किसी समय हुआ कि जब माँ ढाका में नहीं थीं और मैं एकान्त में अपने कमरे में सन्ध्या और रात्रि के समय अपने भावमें गान करने लगता तो देखता कि माँ स्थिर मूर्ति में खड़ी हैं। कभी-कभी घूम फिर कर ढाका लौट आने पर माँ कहतीं—“उस दिन जो गाना तू गा रहा था, उसे अब गा तो।” यद्यपि तब तक वह गाना माँ को दिखाया भी नहीं गया था तथा कोई चर्चा भी नहीं उठी थी।

माँ के दर्शनों की उत्कट व्याकुलता कभी-कभी एकमुखी हो मुझे असीम में बहा ले जाती थी। इस प्रकार की अवस्था में भीतर से जिन गानों की रचना हुई थी, उन्हें ‘श्रीचरणों में’ इस नाम की पुस्तक में छपवा दिया था।

इसके अलावा कितने गाने, कितनी ही कवितायें, कितने प्रबंध माँ के निमित्त लिखे और फाड़े गये उनकी गिनती नहीं है। माँ ने एक दिन यह सुनकर कहा था, ‘केवल इसी जन्म में ही नहीं

न जाने पूर्व कितने जन्मों में कितने फाड़े होंगे इसका कोई ठिकाना है? लेकिन इतना जान लेना कि इतनी फाड़-फूड़ के भीतर से बस इस बार ही तेरा अन्त है।’

उपर्युक्त बहुमुखी कृपा का प्रत्यक्ष प्रभाव यह हुआ कि भूख तो अवश्य लगी किन्तु दूषित जीभ, रस और सुस्वादु भोजन का परित्याग कर कटु और रूखे-सूखे आहार के लिये ही लालायित रहने लगी। वैष्णव ग्रन्थों में देखा जाता है—

“जीभ के खातिर जो इधर-उधर दौड़ता

ऐसा कामुक ओ पेटू कृष्ण नहीं पाता”।

मेरी अवस्था भी वही हुई। माँ की अपार दया और अचिंतनीय स्नेह भी मुझे उनके चरणों में हर समय बाँध नहीं रख सका। अज्ञान जीव के लिए नित्य भाव में स्थित होना बहुत कठिन है। मैंने माँ से एकदिन कहा “आपका ज्ञान जैसा आश्रय पाकर पत्थर भी शायद सोना हो जाता किन्तु मेरा तो कुछ भी नहीं हो पाया।” माँ ने कहा “जो वस्तु तैयार होने में जितना अधिक समय लेती है वह उतनी ही मजबूत और सुन्दर होती है। तू इतना सोचता क्यों है, केवल बालक की तरह हाथ पकड़े रह।” कितनी ही गम्भीर वाणियाँ तथा उपदेश सतृष्ण हृदय से सुनता किन्तु फिर भी प्यासा रहता। मेरी ऐसी दुर्दशा के अन्दर माँ की दृष्टि कितनी अटूट रहती उसका एक उदाहरण नीचे उद्धृत करता हूँ—

माँ का कृपाप्रार्थी हो उनके दर्शनों के प्रेम से जब मैं वहाँ रोज आने-जाने लगा, तब लोग जब तब कटाक्ष करने लगे। उनकी चर्चा सुन मैंने विचार किया कि सदा इधर-उधर दौड़ना चित्तकी दुर्बलता के सिवा और कुछ नहीं है।

‘योगवाशिष्ठ’ का पाठ करके विचार के मार्ग की ओर अग्रसर होऊंगा, ऐसा संकल्प कर मैंने ७-८ दिन उसमें मन लगाया। एक दिन दोपहर को जब कि मैं घर ही पर था खगा ने आकर सूचना दी कि एक वृद्ध ब्राह्मण (विक्रमपुर के अन्तर्गत गाउदिया गाँव के श्री कालीकुमार मुखोपाध्याय) पाँच मिनट के लिए आप से मिलना चाहते हैं। उनसे मिलने पर उन्होंने कहा “मैं निरंजनबाबू और शशांक बाबू (पूज्य स्वामी अखण्डानन्दजी) के घर गया था, उनको घर पर न पाकर आपको कष्ट देने के लिए आया हूँ। सुना है कि आप माँ आनन्दमयी के भक्त हैं। माँ कैसी हैं उनका विशेषतत्त्व क्या है? ये प्रश्न सुनते ही आँखों में आँसू भर आये। मैं गूँगा-सा हो गया। वे बोल उठे “मैं जवाब पा गया, लेकिन जरा बताइये तो आप रोये क्यों?” मैंने कहा “इधर कुछ दिनों से माँकी चिन्ता छोड़ अन्य विषयों में मस्त था और आप मेरे पास माँ की खोज के लिये आये हैं मैं लज्जा और दुःख से मरा जा रहा हूँ। माँ की कैसी अद्भुत लीला है ! आपने उपयुक्त समय पर आकर मुझे निर्दिष्ट पथ की ओर लौटा दिया है, आपके निकट मैं चिरऋणी रहूँगा।” उन्होंने कहा “मुझे इसी समय माँ के समीप ले चलिए।” माँ का साक्षात्कार पाकर उन्होंने कहा “मैं बहुत दिनों से मातृहीन था किन्तु माँ को देखते ही ऐसा लगा कि मेरा अभाव मिट गया।”

उक्त घटना माँ को बता मैं उनके चरणों पर गिरकर रोने लगा और माँ तो केवल हँसती रहीं। बाद में माँ ने कहा “आज-कल के दिनों में आँखों में अँगुली देकर प्रत्यक्ष न दिखलाने से काम नहीं चलता।”